पाठ्यक्रम - ४

४.अ संसार के प्रमुख पात्र : जीव - अजीव

जिसमें चेतना पाई जावें अर्थात् जो सुख-दु:ख का संवेदन करता हो उसे जीव कहते हैं। जीव ही संसार में सुख-दु:खों को भोगता है एवं जीव ही कर्मों को क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है।

जो चेतना शून्य, सुख-दु:ख के संवेदन से रहित, जड़ अज्ञानी हो उसे अजीव कहते है। हमारे आस-पास जो कुछ भी हम देखते हैं वह अजीव है जैसे पुस्तक, पेन कॉपी, कुर्सी, टेबिल, घड़ी इत्यादि।

अजीव के मुख्य रूप से पाँच भेद जैनाचार्यों ने कहे हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें से पुद्गल ही हमें देखने में आता है शेष नहीं। धर्मादि का वर्णन आगे के अध्याय में किया जावेंगा।

जीव के मुख्य रूप से दो भेद हैं -

(१) संसारी जीव

(२) मुक्त जीव

जिन्होंने ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का क्षय (नष्ट) कर दिया है, ऐसे जीव मुक्त जीव कहलाते हैं। सिद्ध परमेष्ठी ही मुक्त जीव हैं। जिन्होंने कर्मों का क्षय नहीं किया तथा चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं, उन्हें संसारी जीव कहते हैं।

आनन्द स्त्रोत, भीतर ही है खोजो, बाहर नहीं ।

शब्दार्थ जानो, भावार्थ प्रकट हो, आनन्द झरे ।

जो हुआ अच्छा , आगे भी अच्छा होगा, मन बना लो ।

कम बोलना, अधिक सुनना सो, बुद्धिमत्ता है ।

त्रस व स्थावर जीव

संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं। जो कष्टों से भयभीत हो भागते हैं, चलते-फिरते हैं उन्हें त्रस जीव कहते हैं। जिनके दो से लेकर पांच तक इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें त्रस जीव कहते हैं। उदाहरण - देव, मनुष्य, हाथी, मक्खी, चींटी, इल्ली आदि।

जो प्राय: एक ही स्थान पर रहते हैं दु:खों से भयभीत हो भाग नहीं सकते उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। इनके एकमात्र स्पर्शन इंद्रिय ही होती है। उदाहरण - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति।

संसारी जीव समनस्क और अमनस्क के भेद से भी दो प्रकार के हैं। मन सहित जीव समनस्क कहे जाते हैं इन्हें संज्ञी भी कहा जाता है। मन रहित जीव अमनस्क होते हैं। इन्हें असंज्ञी कहते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में कुछ संज्ञी व कुछ असंज्ञी होते हैं। देव, मनुष्य व नारकी नियम से संज्ञी ही होते हैं।

आत्मा के प्रकार - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अपेक्षा से भी जीव के तीन भेद कहे हैं। जो अपने देह व पर के देह को ही आत्मा मानता है बहिरात्मा कहलाता है। जो सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मा और देह के भेद को जानते हैं वे अन्तरात्मा है। आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्राप्त जीव परमात्मा कहलाते हैं।

भव्य-अभव्य जीव-

जो जीव मोक्ष प्राप्त करने की अर्थात् भगवान बनने की क्षमता रखते हैं उन्हें भव्य जीव कहते हैं। पेड़-पौधे, निगोदिया जीव भी भव्य हो सकते हैं। भव्य कभी अभव्य एवं अभव्य कभी भव्य नहीं बन सकता।

जो जीव मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखते उन्हें अभव्य जीव कहते हैं। महाव्रतों को धारण करने वाले मुनि भी अभव्य हो सकते हैं। अभव्य जीव मुनिव्रतों को धारण कर नवमें ग्रेवेयक (स्वर्ग) तक जन्म ले सकता है किन्तु मोक्ष नहीं जा सकता। भव्य, अभव्य पारिणामिक भाव है अत: उन्हें हम तुम नहीं जान सकते मात्र केवलज्ञानी ही जान सकते हैं कि कौन सा जीव भव्य हैं और कौन सा जीव अभव्य।

भव्य जीव भी आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरानुदूर भव्य की अपेक्षा से तीन प्रकार के होते हैं।

१. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है एवं शीघ्र ही मुक्ति का लाभ प्राप्त करेंगे वे आसन्न भव्य हैं इन्हें निकट भव्य भी कहते हैं।

२. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, किन्तु भविष्य में प्राप्त करेंगे और मुक्ति का लाभ प्राप्त करेंगे वे दूर भव्य हैं।
३. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, न ही भविष्य में प्राप्त कर पाएँगे, किन्तु क्षमता तो है, वे दूरानुदूर भव्य हैं इन्हें अभव्यसम भव्य भी कहते हैं।
संसारी जीवों में सबसे उत्कृष्ट आत्मा को, कर्म कलंक से रहित आत्मा को परमात्मा कहते है। शरीर सहित अर्हन्त तो सकल परमात्मा हैं। शरीर रहित सिद्ध निकल परमात्मा हैं।

भेद विज्ञान की ज्योति कैसे जले?

उदाहरण : जैसे सूखी माचिस होती है तो वह शीघ्र जल जाती है लेकिन वर्षा ऋतु के कारण जिस माचिस में आर्द्रता आ जाती है उसे जलाते हैं तो क्या वह शीघ्र जलती है? नहीं। बहुत देर से जलती है। जब घर्षण करते-करते उष्णता उत्पन्न हो जाती है या धूप में सुखा देते हैं, तब जल जाती है। ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा रूपी माचिस मोह, राग-द्वेष रूपी जल से गीली हो गई है। शीघ्र भेद विज्ञान की ज्योति जलती नहीं है। लेकिन तत्त्व चिंतन करते-करते या तत्त्वाभ्यास की धूप लगा दें तो शीघ्र ही भेद ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। वह भेद विज्ञान पाँच प्रकार से होता है-

(१)जिनागम से (२)श्रद्धा से (३)स्वानुभव से (४)वीतराग स्वानुभव से (५)केवलज्ञान से

वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं,
न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्त्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥१॥

अर्थ : जो (**न देवः**) न देव (**न बंधुः**) न कुटुम्बी (**न कर्मा**) न कर्म (**न कर्ता**) न कर्ता (**न अङ्गं**) न शरीर के अवयव (**न सङ्गं**) न परिग्रह (**न स्वेच्छा**) न अपनी इच्छा और (**न कायं**) न शरीररूप हैं ऐसे (**शिवं**) कल्याण स्वरूप (**शुद्धबुद्धं**) कर्मों से रहित निर्मल केवलज्ञान स्वरूप (**परं**) उत्कृष्ट और (**विश्वनाथं**) तीनों लोकों का स्वामी (**चिदानन्दरूपं**) आत्मानन्द स्वरूप (**वीतरागम् नमः**) वीतराग देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः,
न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥२॥

अर्थ : जो (**न बन्धो**) न बन्ध (**न मोक्षो**) न मोक्ष (**न रागादिदोषः**) न राग आदि दोष (**न योगं**) न मनादि योग (**न भोगं**) न भोग (**न व्याधिः**) न रोग (**न शोकः**) न शोक (**न कोपं**) न क्रोध (**न मानं**) न मान (**न माया**) न माया (**न लोभं**) न लोभ स्वरूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,
न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः र्न देवो न मर्त्यः,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥३॥

अर्थ : जो (**न हस्तौ**) न हाथ (**न पादौ**) न पैर (**न घ्राणं**) न नाक (**न जिह्वा**) न जीभ (**न चक्षुः**) न नेत्र (**न कर्णं**) न कान (**न वक्त्रं**) न मुँह (**न निद्रा**) न निद्रा स्वरूप है और (**न स्वामी**) न मालिक (**न भृत्यः**) न नौकर (**न देवः**) न देवगति के देव (**न मर्त्यः**) न मनुष्य हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न जन्म न मृत्यु र्न मोहं न चिंता,
न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥४॥

अर्थ : जो (**न जन्म**) न जन्म (**न मृत्युः**) न मरण (**न मोहं**) न मोह (**न चिंता**) न चिन्ता है (**न क्षुद्रा**) न छोटे (**न भीतो**) न भयभीत (**न कार्श्यं**) न कृश (**न तन्द्रा**) न प्रमादी (**न स्वेदं**) न पसीना (**न खेदं**) न दुःखरूप (**न वर्णं**) न रंग व (**न मुद्रा**) न चिह्नरूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

त्रिदण्डे! त्रिखण्डे! हरे ! विश्वनाथं,
हृषीकेश! विध्वस्त- कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥५

अर्थः (**त्रिदण्डे!**) हे तीन दण्ड के धारी (**त्रिखण्डे! हरे!**) तीन खण्ड के अधिपति सर्व दुःखहारी नारायण (**हृषीकेश!**) इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय आप (**विश्वनाथं**) विश्व के स्वामी (**विध्वस्त-कर्मादि-जालम्**) कर्म के समूह को नाश करने वाले (**न पुण्यं**) न पुण्यरूप (**न पापं**) न पापरूप (**च**) और (**न अक्षादि-गात्रं**) न नेत्रादि शरीर स्वरूप हैं ऐसे **चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो,
न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥६ ॥

अर्थ : जो (**न बालो**) न बालक (**न वृद्धो**) न वृद्ध (**न तुच्छो**) न हीन (**न मूढा**) न मूर्ख (**न स्वेदं**) न पसीना वाले (**न भेदं**) न भेदरूप (**न मूर्तिः**) न मूर्तिक (**न स्नेहः**) न स्नेह वाले (**न कृष्णं**) न काले (**न शुक्लं**) न गोरे (**न मोहं**) न मोही और (**न तंद्रा**) न तन्द्रारूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्,
न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥७ ॥

अर्थ : जो (**न आद्यं**) न आदि (**न मध्यं**) न मध्य (**न अन्तं**) न अन्त स्वरूप (**न अन्यत्**) न दूसरे रूप (**न द्रव्यं**) न द्रव्य (**न क्षेत्रं**) न क्षेत्र (**न कालो**) न काल (**न भावः**) न भाव (**न शिष्यो**) न शिष्य (**न गुरु**) न गुरु (**अपि हीनं न दीनं**) न हीन न दीन ही हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी,
न पूर्णं न शून्यं न चैत्य-स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥८ ॥

अर्थ : (**इदं**) यह आत्मा (**स्वयं**) स्वयं (**ज्ञानरूपं**) ज्ञान स्वरूप है (**तत्त्ववेदी**) तत्त्वों को जानने वाली है (**न पूर्णं**) न पूर्ण (**न शून्यं**) न शून्य (**न चैत्य-स्वरूपम्**) न प्रतिमारूप है (**चन न अन्या**) और न दूसरा (**न भिन्नं**) न अलग (**न परमार्थं**) न परमार्थरूप (**न एकं**) न एकरूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

आत्माराम- गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायंति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष- हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९ ॥

अर्थ : (**त्वयि सर्वग**) आप सर्वज्ञ में (**सर्वे भूत-गतागते**) सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल सम्बन्धि (**सुखदुःखे ज्ञाते**) सुख-दुःख को जान लेने पर (**स्वयं**) स्वतः (**योगीश्वराः**) मुनीश्वर गणधर देव (**स्वमनसा**) **अपने मन से** (**ध्यायन्ति**) आपका ध्यान करते हैं (**आत्माराम-गुणाकरं**) आत्मारूपी बगीचे में गुणों की खान (**गुणनिधि**) गुणों के भण्डार (**चैतन्य-रत्नाकरं**) चैतन्यरूपी समुद्र (**तं**) उन (**हरिवंश-हर्ष-हृदयं**) हरिवंश के हर्ष के हृदय/मुख्य कारण श्री मुनिसुव्रतनाथ और श्री नेमिनाथ वीतरागदेव की मैं (**हृदा**) हृदय से (**वंद**) वन्दना/नमस्कार करता हूँ (**श्रीमान्**) अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी सम्पन्न (**त्रैलोक्याधिपते!**) हे तीनों लोकों के स्वामी (**अभ्युद्यताम्**) मुझे अपने निकटवर्ति करें।

धरोहर

एक बार एक सम्राट ने एक संन्यासी का निमंत्रण किया। संन्यासी बड़ा खुश कि आज तो सम्राट के यहाँ अच्छे-अच्छे शुद्ध घी के पकवान खाने को मिलेंगे। उसने एक दिन पहले ही भोजन घर पर बंद कर दिया जिससे सम्राट के यहाँ अधिक भोजन किया जा सके। सन्यासी भोजन करने गया तो सम्राट ने बिना घी की रोटी और चने की भाजी परोसी यह देख संन्यासी को आश्चर्य हुआ। सम्राट संन्यासी के मन की बात समझ गया। और बोला मेरे यहाँ प्रतिदिन यही भोजन बनता है। संन्यासी कहता है कि आपके पास तो बहुत बड़ा खजाना है आप चाहें तो रोज अच्छे-अच्छे पकवान खा सकते हैं। सम्राट कहता वह खजाना तो जनता का है, जनता के लिए ही है। मेरे पास तो सिर्फ थोड़ी-सी खेती है उससे जो प्राप्त होता है उसी से मैं अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ।

और भी ऐसे-ऐसे सम्राट सुने हैं जिनकी रानी टोपी बेचकर प्राप्त आय से अपनी आजीविका चलाते थे। राजकोष को तो वह निर्माल्य समझते थे।

पाठ्यक्रम - ४

४ ब वर्तमान शासन नायक - भगवान महावीर

लगभग २६०० वर्ष पूर्व इस भारत भूमि पर एक महापुरुष का जन्म हुआ। जिसने इस धरती पर फैले अज्ञान को दूर कर सत्य, अहिंसा और प्रेम का प्रकाश फैलाया। उन महापुरुष को जन-जन अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के नाम से जानते हैं। भगवान महावीर का संक्षिप्त जीवन-दर्शन इस प्रकार है :-

मधु नाम के वन में एक पुरुरवा नाम का भील रहता था। कालिका उसकी पत्नी का नाम था। एक दिन रास्ता भूलकर सागरसेन नाम के मुनिराज उस वन में भटक रहे थे, कि पुरुरवा हिरण समझकर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुआ, तब उसकी पत्नी ने कहा कि स्वामी! ये वन के अधिष्ठाता देव हैं। इन्हें मारने से तुम संकट में पड़ जाओगे, कहकर रोका।

तब दोनों प्रसन्नचित्त हो मुनिराज के पास पहुँचे तथा उपदेश सुनकर शक्त्यानुसार मांस का त्याग किया। आयु के अंत में निर्दोष व्रतों का पालन करते हुए, शान्त परिणामों से मरण प्राप्त कर वह भील सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

स्वर्ग सुख भोगकर भरत चक्रवर्ती की अनन्तमति नामक रानी से मारीचि नाम का पुत्र हुआ तथा प्रथम तीर्थङ्कर वृषभनाथ जी के साथ देखा-देखी दीक्षित हो गया। भूख-प्यास की बाधा सहन न कर सकने के कारण भ्रष्ट हो, अहंकार के वशीभूत होकर तापसी बन सांख्य मत का प्रवर्तक बन गया। तथा अनेक भवों तक पुण्य-पाप के फलों को भोगता हुआ, सिंह की पर्याय को प्राप्त हुआ।

एक समय वह हिरण का भक्षण कर रहा था, तभी अजितञ्जय और अमितदेव नाम के दो मुनिराजों के उपदेश सुन जातिस्मरण होने पर व्रतों को धारण किया तथा संन्यास धारण किया जिसके प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में सिंह केतु नाम का देव हुआ। आगे आने वाले भवों में चक्रवर्ती आदि की विभूति का उपभोग कर जम्बूद्वीप में नंद नाम का राजपुत्र हुआ। प्रोष्ठिल नाम के मुनिराज से दीक्षा ले सोलह कारण भावना भाते हुए महापुण्य तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया फिर आयु के अंत में आराधना पूर्वक मरण कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ। वहां से च्युत होकर अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुआ।

भगवान महावीर का जन्म वैशाली गणतंत्र के कुण्डलपुर राज्य के कश्यप गोत्रीय नाथ वंश के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ और त्रिशला रानी के आँगन में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के शुभ दिन हुआ। बालक सौभाग्यशाली, अत्यन्त सुन्दर, बलवान, तेजस्वी, मुक्तिगामी जीव था। सौधर्म इन्द्र ने सुमेरु पर्वत पर भगवान बालक का अभिषेक करने के बाद 'वीर' नाम रखा। जन्म समय से ही पिता सिद्धार्थ का वैभव, यश, प्रताप, पराक्रम और अधिक बढ़ने लगा। इस कारण उस बालक का नाम वर्द्धमान भी पड़ा। राजकुमार वर्द्धमान असाधारण ज्ञान के धारी थे। संजयन्त और विजयन्त नामक दो मुनि अपनी तत्व विषयक कुछ शंकाओं को लिए आकाश मार्ग से गमन कर रहे थे तभी बालक वर्द्धमान को देखते ही उनको समाधान प्राप्त हो जाने से उन्होंने उस बालक का नाम 'सन्मति' रखा। एक दिन कुण्डलपुर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर गजशाला से बाहर निकल भागा। वह मार्ग में आने वाले स्त्री पुरुषों को कुचलता हुआ नगर में उथल-पुथल मचाते हुए घूम रहा था। जिससे जनता भयभीत हो प्राण बचाने हेतु इधर-उधर भागने लगी। तब वर्द्धमान ने निर्भय हो हाथी को वश में कर मुट्ठियों के प्रहार से उसे निर्मद बना दिया। तब जनता ने बालक की वीरता से प्रसन्न हो बालक को 'अतिवीर' नाम से सम्मानित किया। वर्द्धमान एक बार मित्रों के साथ खेल रहे थे तभी संगम नामक देव विषधर का रूप धरकर आया। जिसे देखकर सभी मित्र डर के मारे भाग गये। परन्तु वर्द्धमान सर्प को देख रंच मात्र भी नहीं डरे, अपितु निर्भयता से उसी के साथ खेलने लगे। तब देव प्रकट होकर भगवान की स्तुति करने लगा एवं उनका नाम 'महावीर' रखा।

जब वर्द्धमान यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। तब माता-पिता ने वर्द्धमान का विवाह राजकुमारी यशोदा के साथ करने का निर्णय लिया। अपने विवाह की बात जब महावीर को ज्ञात हुई तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। गृहस्थ जीवन के बंधन में न

फंसते हुए तीस (30) वर्ष की यौवनावस्था में स्वयं ही दिगम्बर दीक्षा अंगीकार की। बारह वर्ष तक मौन पूर्वक साधना करते हुए ब्यालीस (42) वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया फिर लगभग तीस (30) वर्ष तक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए बहात्तर (72) वर्ष की आयु में कार्तिक वदी अमावस्या के ब्रह्ममुहूर्त में (सूर्योदय से कुछ समय पहले) पावापुर ग्राम के सरोवर के मध्य से निर्वाण को प्राप्त किया।

भगवान महावीर का शेष परिचय

गर्भ – तिथि	–	आषाढ़ शुक्ल ६	जन्म – तिथि	–	चैत्र शुक्ल १३
दीक्षा – तिथि	–	मार्ग, कृष्ण १०	केवलज्ञान – तिथि		वैशाख शुक्ल १०
उत्सेध/वर्ण	–	७ हाथ/ स्वर्ण	वैराग्य कारण	–	जाति स्मरण
दीक्षोपवास	–	बेला	दीक्षावन/वृक्ष	–	नाथवन/साल वृक्ष
सहदीक्षित	–	अकेले	सर्वऋषि संख्या	–	१४,०००
गणधर संख्या	–	११	मुख्य गणधर	–	इन्द्रभूति
आर्यिका संख्या	–	३६,०००			
यक्ष	–	गुह्यक	यक्षिणी	–	सिद्धायिनी
योग निवृत्तिकाल	–	दो दिन पूर्व	केवलज्ञान स्थान	–	ऋजुकूला
चिह्न	–	सिंह	समवशरण में श्रावक संख्या	–	१ लाख
श्राविका	–	३ लाख	मुख्य श्रोता	–	श्रेणिक

''जीवन की सफलता का सूत्र है अपने विषय में अधिक सोचना/जागरुकता और असफलता का सूत्र है दूसरों के विषय में अधिक सोचना, जागरुकता का अर्थ यथार्थ को स्वीकारना। मूर्च्छा से जागरुकता की ओर जाने के लिए अपनी कमजोरी को स्पष्ट समझना और उससे मुक्त होने का दृढ़ निश्चय करना।''

विशेष – केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् गणधर के अभाव में छयासठ (६६) दिन तक भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि नहीं हुई। जिस दिन भगवान महावीर की प्रथम देशना हुई भी उसे वीर शासन जयन्ती के रूप में (श्रावण कृ. १) मनाते हैं।

काला अक्षर भैंस बराबर

एक बालक था जो पढ़ा-लिखा नहीं था। पिता ने उसका समय पर विवाह कर दिया। एक बार वह अपनी ससुराल गया। सासु ने दामाद की बड़ी खातिरदारी की। सासु ने कहा 'दामाद जी परदेश से पत्र आया है।' मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। यह पत्र आपके श्वसुर जी का आया हुआ है, पढ़कर सुना दीजिए।

वह बालक पढ़ा-लिखा नहीं था। वह चक्कर में पड़ गया और मन-ही-मन विचार करने लगा-पत्र कैसे पढूं? मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है। पिताजी ने मुझे पढ़ाया नहीं। उसे अपने अज्ञान पर बहुत दु:ख हुआ और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। मुँह से कुछ भी नहीं बोल सका। सासु जी ने विचार किया ये पत्र पढ़कर रो रहे हैं। हो-न-हो दाल में कुछ काला है। अवश्य ही मेरे पति का अवसान हो गया है। यह विचार कर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका करुण रुदन सुनकर आसपास की स्त्रियाँ भी आ गईं। सभी अपनी संवेदना प्रकट करने के लिए स्वर में स्वर मिलाने लग गई। घर में कुहराम मच गया। आजू-बाजू के कुछ पुरुष भी आ गए। उन्होंने पूछा-'क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि सेठ जी अच्छी तरह से हैं तथा अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है? पत्र उनको दिखाया गया। पत्र में लिखा था-'मैं अच्छी तरह से हूँ और भगवान की कृपा से अच्छी कमाई भी हो रही है।'

पत्र का सही अर्थ ज्ञात होते ही सब अवाक् रह गए। घर का सब वातावरण बदल गया। सबके चेहरे पर खुशी छा गई और दामाद से पूछा गया कि आपने पत्र कैसे पढ़ा? दामाद ने दु:ख भरी भाषा में कहा 'भाइयों अगर मैं पढ़ा हुआ होता तो आँखों से आँसू क्यों निकलते ? मैं तो अपने पिताजी को रो रहा हूँ कि उन्होंने मुझे पढ़ाया क्यों नहीं।

शिक्षा – बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति को कदम-कदम पर दु:ख उठाना पड़ता है। पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है, अत: प्रत्येक व्यक्ति को विद्यार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बिना पढ़ाई जड़ मनुज, करता रुदन अपार।
अर्थ सही नहिं पा सका, जिससे हाहाकार॥

सिद्धों की श्रेणी में

सिद्धों की श्रेणी में आने, वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को-२, शत-शत मेरा प्रणाम है।।
शत-शत मेरा प्रणाम है।।
मोक्ष मार्ग पर अंतिम क्षण तक, चलना जिनको इष्ट है।
जिन्हें डिगा सकता ना पथ से, कोई विघ्न अनिष्ट है।।
जिनकी है निःस्वार्थ साधना-२, जिनका तप निष्काम है...
जग के .....।।
मन में किंचित हर्ष न लाते, सुन अपना गुण-गान जो।
और वे अपनी निंदा सुनकर, करते नहीं विषाद जो।।
दोनों समय शांति में रहना-२, जिनका शुभ परिणाम है..
जग के .....।।
हर उपसर्ग सहन जो करते, माने कर्म विचित्रता।
एक भाव से झेला करते, ठंडी-वर्षा-उष्णता।।
उनको जैसी शीतल छाया-२, वैसी भीषण घाम है...
जग के .....।।
जिनका समता धन खरीदने, को असमर्थ कुबेर जो।
रतनत्रय से भरते रहते, अपना चेतन कोष जो।।
और उसी की रक्षा में रत-२, रहते आठों याम हैं...
जग के .....।।
सिद्धों की श्रेणी में आने, वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को-२, शत-शत मेरा प्रणाम है- २।।

.....

एक में डूबो,
अनेक विकल्प सो,
डूबते दिखे ।

ज्यादा पढ़ा ना,
ज्यादा बार पढ़ा हो,
तो लाभ मिले

जिनवाणी स्तुति

श्वास-श्वास में तुझे बसायें, हे जिनवाणी माँ!
बार-बार हम शीश झुकायें, हे जिनवाणी माँ! ।।टेक।।
मूल अर्थ कर्त्ता हैं तेरे, तीर्थङ्कर स्वामी।
उत्तर ग्रन्थ रचयिता तेरे, श्री गणधर स्वामी।।
हम सब श्रोता सुनने आए, श्री जिनवाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।१।।
ज्ञान सूर्य सम निर्मल बनता, तेरी वाणी से।
चारित चन्दा-सा उज्ज्वल हो, तेरी वाणी से।।
अखिल विश्व कल्याण कारिणी, आगम वाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।२।।
ग्वाला को भी कुन्दकुन्द सा, संत बनाती माँ।
ग्रन्थ सिखा निर्ग्रन्थ बना, अरिहन्त बनाती माँ।।
तीर्थङ्कर की दिव्य देशना, मोक्ष दायिनी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।३।।
तेरे अमृत अक्षर माता ! अक्षय पद दाता।
तेरे पर हर आपद हरते, हैं शिव पद दाता।।
ओम् नमः अर्हं सिखलाती, अर्हद् वाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।४।।
अहो भारती सारवती माँ!, सरस्वती माता।
वीर हिमाचल से निकली हो, ज्ञान सलिल दाता।।
पाप-ताप संताप हारिणी, जग कल्याणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।५।।
श्वास-श्वास में तुझे बसाएँ, हे जिनवाणी माँ!
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ! ।।

दृढ़ राखे श्रद्धान

वस्तुस्वरूप इसी प्रकार ही अन्य प्रकार नहीं ऐसा तलवार की धार पर पानी की तरह अटल श्रद्धान होता है तो सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात जैसे तलवार की धार का पानी हवा द्वारा चलायमान नहीं होता है वैसे ही जिसके सच्चे देव, शास्त्र , गुरु संबंधी श्रद्धा का परिणाम मिथ्यादृष्टि के वचनरूपी हवा के द्वारा संशय को प्राप्त नहीं होता। उसे सम्यग्दर्शन होता है।

अपना श्रद्धान कैसा अटल होना चाहिए, इसी तथ्य को प्रकाशित करने वाली एक छोटे-से बालक की घटना है-

एक पाँच वर्ष का बालक था। उसको बहुत प्रलोभन दिया गया कि देखो मैं तुम्हें बहुत सारा प्रसाद दूँगा खिलौने दूँगा पर तुम ये कहदो कि मैं लड़की हूँ। लेकिन वह किसी भी प्रकार से कहने को तैयार नहीं हुआ, कि मैं लड़की हूँ क्योंकि उसे विश्वास था कि मैं लड़का हूँ। ऐसे ही जीवादि सात तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनागम ने कहा है वह उसी प्रकार है अन्य प्रकार नहीं। ऐसा दृढ़ विपरीताभिनिवेश रहित विश्वास जब होता है तब सम्यग्दर्शन होता है।

गुरु वंदना

दया करो संकट हरो, विद्या गुरु भगवान।
मुझे भरोसा आप पर, रखना मेरा ध्यान॥१॥
गिरे न मेरा मन कभी, रहे माथ पर हाथ।
मैं बालक डरपोक हूँ, रखना मुझको साथ॥२॥
गुरु ही मेरे अंग हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
यह जीवन गुरु के बिना, जैसे इक श्मशान॥३॥
शिष्य भले ही दूर हो, रखते हैं गुरु ध्यान।
अंतरंग के भाव से, देते हैं वरदान॥४॥
गुरु हैं जग में कल्पतरु, फल उपदेश महान्।
जो भी खाता है इसे, बनता वह भगवान॥५॥
गुरु गंधोदक से मिटे, तन मन के सब रोग।
भक्ति भाव के साथ ही, ले लो सारे लोग॥६॥
मेरे गुरुवर मेघ हैं, बच्चे हम सब मोर।
नाच रहे हैं प्यार से देखत इनकी ओर॥७॥
विद्यासागर चरण की, जिसे मिली है धूल।
उसे मिला है जगत में, मन वांछित फलफूल ॥८।
मन वच तन से कर रहे, जो निज पर उद्धार।
ऐसे विद्या संत को, प्रणाम बारम्बार॥९॥
विद्यासागर में भरे, रत्न अनंतानंत।
इन्हें प्राप्त कर बन रहे, संत लोक श्रीमंत॥१०॥
दुर्जन के दुर्गुण मिटे, रोगी के सब रोग।
साधु साधे साध्य को, पा गुरुवर का योग॥११॥
धर्म धुरंधर गुरु रहे, करुणा के अवतार।
भविजन को भव-सिन्धु में, ये ही तारणहार॥१२॥
गुरु ही मेरे त्राण हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
गुरु ही मेरी शान हैं, गुरु ही मम पहचान॥१३॥
विद्यासागर गुरु मिले, हमे भाग्य से आज।
भवसागर से तैरने, ये हैं परम जहाज॥१४॥
गुरु स्वाती की बूँद हैं, शिष्य सीप सम जान।
गुरु आज्ञा संयोग है, मोती केवलज्ञान॥१५॥
मैं पूजूँ गुरुदेव को, मम उर में रख पाद।
जब तक शिव सुख ना मिले, करूँ इन्हीं को याद॥१६॥
भव आतप से जल रहे, थे हम सब के प्राण।
विद्यासागर नीर से, मिला सु जीवन दान॥१७॥
मेरे गुरु के पूज्य हैं, गज-रेखा के पैर।
हिंसक पशु भी छोड़ते, इत आकर सब वैर॥१८॥
विद्यासागर के चरण, जग में पूज्य महान।
शरणागत को शरण हैं, बनने को भगवान॥१९॥
गुरुवर ने जो भी दिया, मुझ को यह आधार।
युगों-युगों तक मैं नहीं, भूलूँगा उपकार॥२०॥
विद्यासागर सूर्य हैं, शिष्य किरण सम जान।
इनके दर्शन मात्र से, मिटता तम अज्ञान॥२१॥
विद्या गुरुवर ने दिया, जन-जन को यह सीख।
निज में निधि अपार है, मत मांगो रे भीख॥२२॥

पाप का मूल कारण परिग्रह

एक बार दो भाई धन कमाने के लिए परदेश गए। वहाँ दोनों ने मिलकर बहुत धन कमाया। वे दोनों धन लेकर घर आ रहे थे। रास्ते में बड़े भाई के मन में पाप आ गया। उसने सोचा – यदि मैं छोटे भाई को मार दूँ तो पूरा धन मुझे मिल जाएगा। बड़ा भाई इस प्रकार विचार कर रात्रि में सो गया।

छोटा भाई जाग रहा था। उसके मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न हुए जैसे बड़े भाई के हुए थे लेकिन कुछ ही देर में उसकी बुद्धि पलट गई, वह अपने को धिक्कारने लगा। उसे अपने आप पर बहुत क्रोध आया। उसने पूरा धन जो सिक्कों के रूप में था नदी में बहा दिया।

सिक्कों के गिरने की आवाज सुनकर बड़े भाई की नींद खुल गई, उसने उठकर पूछा ''भैया! तुमने यह क्या किया?'' छोटे भाई ने कहा – ''भैया! इस धन के कारण मेरे भाव बिगड़ गये, मेरे भाव तुम्हें मारने के हो गए अत: मैंने पूरे सिक्के (धन) नदी में फेंक दिए।'' बड़े भाई ने कहा – ''भाई! तुमने बहुत अच्छा किया क्योंकि मेरे भी इस धन के कारण ऐसे ही भाव बिगड़ गए थे।''

सारांश : बहुत धन इकट्ठा नहीं करना चाहिए। धन आने पर दान-परोपकार आदि पुण्य कार्यों में खर्च कर देना चाहिए। क्योंकि परिग्रह के होने पर भाव खराब होने लगते हैं; नैतिकता, सदाचार समाप्त होने लगता है।

- **सुखी वह नहीं जिसके पास सम्पदा है, सुखी वह है जो हर हाल में मस्त और संतुष्ट रहकर जीवन जीने की कला जानता है।**
- **जीवन में सफलता पाना प्रतिभा और अवसर की अपेक्षा एकाग्रता और निरंतर प्रयास पर कहीं अधिक आधारित है।**

संस्मरण - साधन एवं साधना

साधनों के चक्कर में साधना भटक रही है। अगर साधन अधिक हो जाएँ तो क्या हो? और अगर साधनों की कमी हो जाए तो क्या हो? यह कोई जरूरी नहीं कि साधनों के अभाव में साधना ही न हो। बल्कि यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि साधनों के अभाव में या कमी में सबसे अच्छी साधना होती है और सर्वश्रेष्ठ साधना वही कहलाती है जो अभावों में की जाती है।

बात उस समय की है, जब आधुनिक साधनों की प्राय: कमी सी रहती थी। ग्रामोफोन या रेडियो प्रत्येक घर में नहीं होते थे, या तो होटल में या सेठ-साहूकारों के पास होता था। घड़ी का भी यही हाल था, जब कभी घड़ी देखना, रेडियो या ग्रामोफोन सुनना हो तो उनके यहाँ जाना पड़ता था। या मस्जिदों की अजान के नगाड़े से, मन्दिरों के जय घण्टों से समय का पता लगाते थे। दोपहर में चरु चढ़ाने का समय, आरती का समय ज्ञात करके समय का ज्ञान होता था। मोटर देखने उसके पास पहुँचकर छूकर देखते, इसी प्रकार ग्रामोफोन।

पहले आस्था बहुत थी, क्योंकि साधनों का अभाव था परन्तु आज साधनों की बहुलता ने आस्था कमजोर कर दी। मनुष्यों को निठल्ला बना दिया, कमजोर एवं पराधीन कर दिया। इसलिए आज मानव साधनों का दास हो गया, जबकि होना उसको साधना का दास चाहिए। यह बात आचार्य विद्यासागर जी महाराज में विपरीत दिखती है अर्थात् वे साधना के, सम्यक् साधना के दास हैं साधनों के नहीं क्योंकि उनको आस्था समाप्त नहीं करनी बल्कि आस्था मजबूत बनाकर साध्य तक जाना है।

भजन

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल ।

सबकी ताकत, सबकी दौलत, सबकी हिम्मत एक ।
सबकी इज्जत, सबकी जरूरत, सबकी किस्मत एक ।
शूल बिछे अगणित राहों में, राह बनाता चल ।
मंजिल तेरे पग .....

छोड़ दे नैय्या अरे खिवैया, टेड़ी है मझधार ।
खून पसीना बहा के अपना, लाए नई बहार
सीमाओं पर आन मचलता, देश भक्ति का बल ।
मंजिल तेरे पग .....

गुरुवर हमको शक्ति देना, मिलकर कार्य करें।
एक होके हम, नेक होके हम, जग कल्याण करें।
हम सब के हैं साथ सदा ही, गुरु भक्ति का बल ।
मंजिल तेरे पग .....

प्रार्थना

जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।
वीतराग जिनदेव भजेंगे, जिनवाणी अनुसरण करेंगे।।
परम दिगंबर मुनि पूजेंगे, उन पर श्रद्धा भक्ति बढ़ायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
सदा बड़ों की विनय करेंगे, छोटों के प्रति प्रेम रखेंगे।
सबसे मिलकर नेक बनेंगे, शक्ति एकता की दिखलायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
गुरु उपकार नहीं भूलेंगे, गुरु आदेश से शिक्षा लेंगे।।
विनय नम्रता नहीं भूलेंगे, धीरज समता को अपनायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे, छान के पानी सदा पियेंगे।
प्रभु के दर्शन नित्य करेंगे, इनके ही गुणगान को गायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
कभी किसी से नहीं लड़ेंगे, प्रेमभाव हम सदा रखेंगे।
दुखियोंपर हम दया करेंगे, उनकी सेवा कर सुख पायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
चुगली भी हम नहीं करेंगे, बिना दिए कुछ चीज न लेंगे।
खोटी संगत सदा तजेंगे, सप्त व्यसन को दूर भगायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।

- **जीवन का सुख कुछ प्राप्ति पर आधारित है तो कुछ प्रतीक्षा पर भी।**
- **बुरा कहलाना अच्छा है, पर अच्छा कहलाकर बुरा बने रहना तो बहुत ही बुरा है।**
- **सम्पन्नता और कृत्रिम जीवनशैली हमारे सुख की अनुभूति को निचोड़ लेती है।**